शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् का विश्लेषण वर्तमान परिपेक्ष्य में

डॉ0 सुप्रिया संजू
असिस्टैंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
अमेठी सेंटर फार संस्कृत एंड इंडिक स्टडिज
अमेठी स्कूल आफॅ लिबरल आर्ट
अमेठी विश्वविद्यालय, हरियाणा
Email: supriyasanju@gmail.com

सारांश

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम"– शरीर ही सभी धर्मों (कर्तव्यों) को पूरा करने का साध ान है। अर्थात शरीर को सेहतमंद बनाए रखना जरूरी है। इसी के होने से सभी का होना है अतः शरीर की रक्षा और उसे निरोगी रखना मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य है। हमारी ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति की भी अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर ही है। स्वस्थ काया में स्वस्थ मन निवास करता है। जीवन के सुख के लिए स्वस्थ मन आवश्यक है। इस स्वस्थ मन के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। शरीर के स्वास्थ्य के लिए शारीरिक शिक्षा का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। यह उक्ति प्रसिद्ध है कि बहुबल से रक्षित राष्ट्र ही शास्त्र का चिंतन कर सकता है। शारीरिक शिक्षा से बल्कि में जो पौरुष, बल एवं शक्ति का विकास होगा, उसी से हमारे देश में अध्ययन, अनुसन्धान, व देश की सीमा की रक्षा, विश्व में शांति, तथा खेत–खलिहानों में उत्पादन की वृद्धि संभव होगी। शारीरिक प्रशिक्षण से छात्रों में सामुहिक भावना, अनुशासन एवं व्यवस्थित कार्य करने की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है। उससे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

न धर्मस्य कर्ता न चार्थस्य हर्ता, न कामस्य भोक्ता न मोक्षस्य पाता।
नरो बुद्धिमान् धीरसत्वोऽपि रोगी, यतस्तद्विनाशद्भवेन्नैव मत्र्यं।।''

(कल्याणकारण, २०–६०)

बुद्धिमान् मनुष्य दृढ़मनस्क होने पर भी यदि रोगी हो तो वह न धर्म कर सकता है, न धन कमा सकता है, न मोक्ष साधन कर सकता है अर्थात् रोगी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुः पुरुषार्थ का साधन नहीं कर सकता। जो पुरुषार्थ को प्राप्त नहीं कर पाता है। वह मनुष्य में जन्म लेने पर भी मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है क्योंकि मनुष्य की सफलता, पुरुषार्थ प्राप्त करने से ही होती है।

वर्तमान में इस प्रदूषित वातावरण में शरीर को स्वस्थ रखना अत्यंत आवश्यक है। शरीर के विषय में भारतीय मनोविज्ञान में कहा गया है कि मानव की भौतिक काया को स्थूल शरीर कहतें है। इस स्थूल शरीर के दो भाग हैं। स्थूल शरीर को अन्नमय कोश एवं दूसरे शरीर को

प्राणमय कोश कहतें हैं। अतः शारीरिक शिक्षा के अंतर्गत अन्नमय कोश और प्राणमय कोश दोनों का विकास सम्मलित है। सामान्य शब्दों में अन्नमय कोश के विकास को शारीरिक विकास एवं प्राणमय कोश के विकास को संवेगात्मक विकास कहा जाता है। शारीरिक विकास का उद्देश्य– शारीरिक विकास के तीन प्रधान उद्देश्य हैं – शरीर को हृष्ट – पुष्ट, सुन्दर सुडोल बनाना एवं उसकी क्षमताओं का विकास करना। शरीर के सभी अंगों एवं संस्थानों की क्रियाओं का सर्वांगीण प्रणालीबद्ध और सामंजस्यपूर्ण विकास करना और शरीर का पूर्ण निरोग रहना। यदि शरीर में कोई दोष और विकृति हो तो उसे सुधारना। क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। यह कथन अक्षरक्षः सत्य है। जिसका शरीर स्वस्थ होगा उसकी आत्मा भी स्वस्थ एवं विकसित होगी। स्वस्थ आत्मा के लिए शरीर कौ स्वस्थ होना आवश्यक है।

संसार के प्रत्येक क्षेत्र में स्वस्थ शरीर की अनिवार्यता है। उपार्जन से लेकर भोजन तक और संघर्ष से लेकर मनोरंजन तक ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें अस्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः आवश्यक है की शरीर पर सर्वाधिक रूप से ध्यान दिया जाए। वर्तमान में संक्रमित वातावरण और संक्रमित शरीर को किस प्रकार कुछ सावधानियों के साथ हम स्वस्थ रख सकतें है इसकी चर्चा वेदों में अनेक स्थलों पर किया गया है। मार्कण्डेय पुराण में एक स्थल पर बताया गया है –

अपमृज्यन्न च स्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः मार्कण्डेय पुराण 34/52

अर्थात स्नान करने के बाद अपने हाथों से या स्नान के समय पहने भीगे वस्त्रों से शरीर को नहीं पोछना चाहिए। ये सामान्य कथन है किन्तु बहुत महत्वपूर्ण है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए सर्वप्रथम मनुष्य को अपने दिनचर्या पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

ऋषियों – मुनियों द्वारा बतलाये गए इन गूढ़ रहस्यों को स्वयं में आत्मसात करना आवश्यक है। ऋषि पतंजलि द्वारा बताए गए अष्टांग योग, आयुर्वेद में बताये सात्विक भोजन और वेदों में बताये गए संस्कार ही इस संक्रमित वातावरण में मनुष्य को स्वस्थ रखने की क्षमता रखता है।

प्रस्तावना

मानव शरीर एक रथ है, जो निरंतर चलता रहता है और हमें भी चलाता है। इसमें यदि कोई अवरोध आ जाए अर्थात हमारा शरीर किसी रोग से, व्याधि से ग्रसित हो जाए तो सब अस्त–व्यस्त हो जाता है।

यदि शरीर स्वस्थ है तो हम दुनिया के किसी भी काम को करने में समर्थ होते हैं परंतु हम स्वयं को असहाय समझने लगते हैं। ऐसा लगता है मानो हमारे साथ–साथ पूरी दुनिया भी स्थिर हो गयी है। मनुष्य को अपने वैयक्तिक, कौटुम्बिक और सामाजिक कर्तव्यों का पालन भली भांति करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका शरीर स्वस्थ, सबल और निरोग रहे और किसी कारणवश शरीर में कोई दुर्बलता या कोई रोग आ जाये तो फिर यह भी आवश्यक है कि उसकी चिकित्सा करके उसे दूर कर दिया जाये।

कोई भी मनुष्य तभी अपने जीवन का पूरा आनन्द उठा सकता है, जब वह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहे। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी शारीरिक स्वास्थ्य अनिवार्य है। ऋषियों ने कहा है 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् यह शरीर ही धर्म का श्रेष्ठ साधन है। यदि हम धर्म में विश्वास रखते हैं और स्वयं को धार्मिक कहते हैं, तो अपने शरीर को स्वस्थ रखना हमारा पहला कर्तव्य है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है, तो जीवन भार स्वरूप हो जाता है। यजुर्वेद में निरन्तर कर्मरत रहते हुए सौ वर्ष तक जीने का आदेश दिया गया है– 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्छतं समाः' अर्थात् 'हे मनुष्य! इस संसार में कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर।'

वेदों में ईश्वर से प्रार्थना की गई है–

पश्येम् शरदः शतम्, जीवेम् शरदः शतम्,
श्रुणुयाम् शरदः शतम्, प्रब्रवाम् शरदः
शतम्, अदीनः स्याम् शरदः
शतम्, भूयश्च शरदः शतात्'

अर्थात् 'हम सौ वर्ष तक देखें, जिएं, सुनें, बोलें और आत्मनिर्भर रहें। हम सौ वर्ष से अधिक भी वैसे ही रहें।'

एक पाश्चात्य विद्वान् डॉ. बेनेडिक्ट जस्ट ने कहा है– 'उत्तम स्वास्थ्य वह अनमोल रत्न है, जिसका मूल्य तब ज्ञात होता है, जब वह खो जाता है।' शरीर में आये किसी भी प्रकार के कष्ट की स्थिति में हम किसी भी काम को करने में असमर्थ हो जाते हैं।

संसार के प्रत्येक क्षेत्र में स्वस्थ शरीर की अनिवार्यता है। उपार्जन से लेकर भोजन तक और संघर्ष से लेकर मनोरंजन तक ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसमें अस्वस्थ शरीर वाला व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है। अतः आवश्यक है की शरीर पर सर्वाधिक रूप से ध्यान दिया जाए। वर्तमान में इस प्रदूषित वातावरण में शरीर को स्वस्थ रखना अत्यंत आवश्यक है।

हमारा शरीर स्वस्थ कैसे रहे, इस बात का ध्यान वैदिक कल से ही रखा गया है। हमारी सांस्कृतिक धरोहर मे शरीर को कैसे स्वस्थ रखा जाये इस विषय पर हमें बहुत साधारण से उपाय में असाधारण तथ्य प्राप्त होतें हैं। जिसका पालन करके हम स्वयं को स्वस्थ और दीर्घायु बना सकते हैं। यथा–

i. अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः। मनुस्मृति ४/१४४ तात्पर्य यदि कोई कारण न हो तो अपनी पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ अर्थात आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा को स्पर्श न करें। आज भी चिकित्सकों द्वारा भी यही कहा जा रहा है।

Ii अपमृज्यान्न च स्नन्तो गात्राण्यम्बरपाणिभिः।। मार्कण्डेय पुराण ३४/५२ अर्थात् पहने हुए कपड़े को बिना स्वच्छ किये पुनः न पहने और सदा स्नान करने के पश्चात् अपने शरीर को अच्छी प्रकार से पोंछ लें।

iii हस्तपाद मुखे चौव पञ्चाद्रे भोजनं चरेत। पद्म. सृष्टि ५१/८८

नाप्रक्षालिाणपादो भुञ्जीत। सुश्रुत संहिता २४/१६ अर्थात् भोजन से पूर्व अपने हाथ पैर मुँह को अवश्य धोएं।

iv न धारयेत् परस्यैवं स्नानवस्त्रं कदाचन। पद्म सृष्टि ५१/८६ अर्थात् स्नान के पश्चात अन्य व्यक्ति द्वारा उपयोग में लाए गए वस्तु का उपयोग ना करें।

प्रतिदिन दिनचर्या में पालन किये जाने वाले इन नियमों से मनुष्य सदा स्वस्थ रह सकता है, ऐसा ग्रंथों में कई वर्शों पहले ही कहा जा चुका है। आज के इस काल में हमारे चिकित्सक भी इन्हीं बातों का पालन करने की सलाह दे रहें हैं।

मुख्य अंश

एक प्राचीन किंवदन्ति है, 'तुम क्या हो यह तुम्हारे भोजन से पता चलता है!' यह किंवदन्ति हमारे शास्त्रों द्वारा दिए गए ज्ञान पर आधारित है, जिनमें ऋषि पतंजलि का योग सूत्र, भगवद् गीता एवं विभिन्न उपनिषद शामिल हैं। स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए एक संतुलित जीवन की जरूरत होती है।

वैदिक ग्रन्थों में प्रदूषणरहित आहार–विहार को स्वास्थ्य के लिए श्रेयस्कर माना गया है। वेद ने न केवल जीवेम शरदः शतम् (यजुर्वेद 36.24, अथर्ववेद 19.68.2) का ही उद्घोष किया है, अपितु वह भूयसीः शरदः शतम् (अथर्ववेद 19.68.8) सौ वर्ष से अधिक जीवित रहने की भी प्रेरणा देता है। परन्तु स्वस्थ और निरोग होकर जीना ही वास्तव में जीवन है। वेद की दृष्टि में यह तभी सम्भव है कि जब व्यक्ति का जीवन सभी प्रकार के प्रदूषणों से मुक्त हो। आज जब प्रदूषण से पत्थरों की चमक गायब होने लगी है, तब मानव तथा इस ग्रह के अन्य प्राणियों पर प्रदूषण का कैसा प्रभाव होता होगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। अतः वेद प्रदूषण रहित आहार–विहार को दीर्घजीवन का साधन बताते हुए कहता है–

यद् अश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।

यद् आद्यं यद् अनाद्यं सर्वं ते अन्नम् अविषं कृणोमि।। अथर्ववेद 8.2.19

अथर्ववेद के इस मन्त्र के द्वारा वेद ने भोजन की समस्त सामग्री को विष दोष से रहित रखने के लिये कहा है। जो भी हम अन्न, दूध, जल, फल, वस्त्र, स्थान आदि सामग्री का उपयोग करते हैं, वह सभी प्रकार के विषों से रहित होनी चाहिये। वेद का उपर्युक्त कथन जितना वर्त्तमान युग में प्रासंगिक है, उतना सम्भवतः प्राचीनकाल में भी नहीं रहा होगा। आज अन्न से लेकर जल तक सभी कुछ यूरिया, फास्फोरस, सल्फेट आदि रसायनिक खाद व कीटनाशकों के प्रयोग से इतना अधिक दूषित हो गया है कि उसको खायें तब भी हानि है और न खायें तो भी जीवन की स्थिति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वस्त्रादि पहने जाने वाली सामग्री जिस साबुन से प्रक्षालित की जाती है, चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से वह अनुचित है। वह नाना प्रकार के चर्म रोगों को उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त है। इसी प्रकार निवास स्थान भी वायु एवं ध्वनि प्रदूषण के कारण रहने के योग्य नहीं रह गये हैं। अतः वेद दीर्घायुष्य के लिये जीवन की मूलभूत सामग्री को सर्वप्रथम निर्विष करने पर बल देता है।

जीवन आदर्शों पर नहीं जिया जा सकता और न हर समय विषों को जानने और उनसे

संक्रमित होने से बचने के साधन उपलब्ध होते है। ऐसे में उनसे आक्रान्त हो जाना स्वाभाविक है। इस कारण मनुष्य का रोगग्रस्त होना कोई विलक्षण घटना नहीं है। भारतीय पद्धति में रोगी की चिकित्सा करते समय सर्वप्रथम उसकी प्रकृति का जानना आवश्यक होता है।

भगवद् गीता के अध्याय 6 के 17 वें श्लोक में भगवान कृष्ण ने इसको आदर्श रूप में अर्जुन के सामने रखा है। वे कहते हैं– युक्ताहारविहारस्य युक्ताचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुरूखहा।।। 17।। तात्पर्य यह है कि 'जिसकी खुराक और चाल संतुलित हो, जिसका आचार बढ़िया हो, जिसका नियम से सोना एवं उठना हो– ध्यान का रास्ता उसके सभी दुखों एवं दुखी जीवन को समाप्त कर देता है।' आधुनिक वैज्ञानिक शोध भी गीता के इस सूत्र की पुष्टि करते हैं। संयम एवं विभेद आज के पथ्य के नियम हैं। हर एक को अपनी खुराक, विचार, पुनर्निर्माण एवं क्रियाओं के बारे में सक्रिय रूप से चिंतन और विचार करना चाहिए।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि– नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चौकान्तमनश्नतः। न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। श्रीमद् भगवत गीता के छठे अध्याय का 16वां श्लोक है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो लोग बहुत ज्यादा खाते हैं, वे कभी भी अपने लक्ष्यों तक पहुंच नहीं पाते हैं। इसी प्रकार जो लोग बहुत कम खाते हैं, वे भी कार्यों को पूर्ण नहीं कर पाते हैं और सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं। आवश्यकता से अधिक खाने पर हमारा पाचन तंत्र बिगड़ सकता है। अपच, कब्ज, एसीडिटी जैसी समस्याएं हो सकती हैं। ठीक इसी प्रकार जो लोग बहुत कम खाते हैं, वे भी पेट से संबंधित कई प्रकार की समस्याओं का सामना करते हैं। दोनों ही स्थितियों में हमारा शरीर भोजन से उचित ऊर्जा प्राप्त नहीं कर पाता है। अधिक भोजन हमें आलस्य देता है और मोटापा भी बढ़ सकता है। कम भोजन से शरीर कमजोर होता है। अतः हमें जितनी भूख होती है, उतना ही भोजन करना चाहिए। श्रीकृष्ण बताते हैं कि व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक सोना भी नहीं चाहिए और ना ही आवश्यकता से कम सोना चाहिए। अधिक या बहुत कम सोने वाले लोग भी लक्ष्यों तक पहुंच नहीं पाते हैं। यदि व्यक्ति अधिक समय तक सोता रहेगा तो उसे कार्य करने के लिए समय कम मिलेगा। कम समय काम होगा तो व्यक्ति सफलता तक पहुंच नहीं पाएगा। आमतौर पर अधिक सोने वाले लोग मोटापे का शिकार हो जाते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं कि– युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु। युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुरूखहा।। यह श्रीमद् भगवत गीता के छठे अध्याय का 17वां श्लोक है। इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने बताया है कि किसे आहार कहते हैं और किसे विहार कहते हैं। जिन लोगों के आहार और विहार श्रेष्ठ रहते हैं, वे लोग ही कार्यों में सफलता और जीवन में सुख प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ जीवन के सोने और जागने के लिए बताए गए नियमों का भी पालन करना चाहिए। जो खाया जाता है, वह होता है आहार। जबकि जो क्रिया पैरों से (चलना–फिरना) की जाती है, उसे विहार कहते हैं। विहार यानी घुमना–फिरना। जिस व्यक्ति का खाना यानी आहार और विहार यानी घुमना–फिरना श्रेष्ठ रहता है, वह हमेशा स्वस्थ रहता है। स्वस्थ व्यक्ति ही कार्यों में सफलता प्राप्त कर पाता है। इन दोनों बातों में या किसी एक बात में भी गड़बड़ी हो जाती है तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। अस्वस्थ व्यक्ति कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता है।

योग के द्वारा भी हम शरीर को स्वस्थ रख रोगों से शरीर को दूर रखते हैं। योग शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिक स्वास्थ्य एवं आत्मानुभूति या हमारे अपने अंदर दिव्यात्मा की अनुभूति प्रदान करता है, इस वर्तमान प्रदूषित भौतिकवादी, क्लेशमय जीवन में योग की सबसे अधिक आवश्यकता है, थोड़ा–सा नियमित आसन और प्राणायाम हमें निरोगी तथा स्वस्थ रख सकता है यम–नियमों के पालन से हमारा जीवन अनुशासन से प्रेरित हो चरित्र में अकल्पनीय परिवर्तन ला सकता है। आधुनिक युग में योग का महत्व और भी बढ़ गया है क्योंकि स्वस्थ शरीर ही प्राथमिकता के रूप में हमारे समक्ष है। कारण है हमारी व्यस्तता, प्रदूषित वातावरण और संक्रमित विश्व ने योग को आवश्यक तत्व बना दिया है।

(द)– निष्कर्ष– षरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"– षरीर ही सभी धर्मों (कर्तव्यों) को पूरा करने का साधन है। अर्थात षरीर को सेहतमंद बनाए रखना जरूरी है। इसी के होने से सभी का होना है अतरू षरीर की रक्षा और उसे निरोगी रखना मनुश्य का सर्वप्रथम कर्तव्य है। हमारी ज्ञान षक्ति, इच्छा षक्ति की भी अभिव्यक्ति का माध्यम शरीर ही हैं। स्वस्थ काया में स्वस्थ मन निवास करता है। जीवन के सुख के लिए स्वस्थ मन आवश्यक है। इस स्वस्थ मन के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। मनुष्य स्वाभाविक रूप से सुख को पाना और दुख से बचना चाहता है। मनुष्य को सुख तब मिलता है, शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहे।

शरीर के स्वास्थ्य के लिए शारीरिक शिक्षा का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। यह उक्ति प्रसिद्ध है कि बहुबल से रक्षित राष्ट्र ही शास्त्र का चिंतन कर सकता है। शारीरिक शिक्षा से बल्कि में जो पौरुष, बल एवं शक्ति का विकास होगा, उसी से हमारे देश में अध्ययन, अनुसन्धान, व देश की सीमा की रक्षा, विश्व में शांति, तथा खेत–खलिहानों में उत्पादन की वृद्धि संभव होगी। शारीरिक प्रशिक्षण से छात्रों में सामुहिक भावना अनुशासन एवं व्यवस्थित कार्य करने की अभूतपूर्व क्षमता उत्पन्न होती है। उससे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा व्यक्ति, समाज राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि– यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते। निरूस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।। इस श्लोक के अनुसार जिस व्यक्ति का मन वश में हो जाता है और भगवान में लग जाता है, वह सभी प्रकार के भोगों, सुख–सुविधाओं और दुखों से ऊपर हो जाता है। ऐसे लोग हर परिस्थिति में सम भाव से रहते हैं। इन्हें सुख–सुविधाओं का भी मोह नहीं रहता है। हमें भी अपने मन को वश में करना चाहिए। ध्यान और योग के माध्यम से हमारा मन एकाग्र हो सकता है। अतः हर रोज कुछ समय के लिए सुबह–सुबह ध्यान करना चाहिए। इससे मन को मजबूती मिलती है और मन वश में होता है तो शरीर भी वश में रहता है और स्वस्थ रहता है। व्यर्थ के सुख–सुविधाओं को पाने के लिए मन भटकता नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 *श्रीमद्भगवद्गीता,* व्याख्याकार – मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।
2 *श्रीमद्भगवद्गीता,* एस राधाकृष्णन कृत हिंदी अनुवाद, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली।

3 *वेदों में भारतीय संस्कृति,* आद्यादत्त–ठाकुर, हिंदी समिति, लखनऊ।
4 *मनुस्मृति,* पंडित रामेश्वर भट्ट, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
5 *वैदिक साहित्य और संस्कृति,* बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर वाराणसी
6 *भारतीय दर्शन,* बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा ओरिएण्टल दिल्ली।
7 *भारतीय दर्शन,* राधाकृष्णन
8 *पातञ्जलयोगदर्शन,* हरिहरानंद, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।